आर्योदय

ARYODAYE

Read Aryodaye on line -- www.aryasabhamauritius.mu

Aryodaye No. 341 ARYA SABHA MAURITIUS 11th *Sept. to 17th Sept. 2016*

LET US LOOK AT EVERYONE WITH A FRIENDLY EYE

- VEDA

आप के जीवन यात्रा निर्विघ्न हो।

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत स्मर ।।

VOUS NE TRÉBUCHEREZ PAS DANS LA VIE !

Om Vāyuranilamamritamathedam bhasmāntam shariram.
Om krato smara, klibe smara, kritam smara.

Yajur Veda 40/15

Glossaire / Shabdārtha :

Vāyu (i) L'âme qui est active / dynamique comme le vent
(ii) L'air, le vent (iii) les prānas – les forces vitales
amilam : immatérielle / spirituelle; **amritam** : immortelle, impérissable, éternel; **atha** : et; **idam shariram**: ce corps est; **bhasmāntam** : mortel / périssable / sujet à la détérioration; **krato** : O âme ! Tu es bien dynamique. Avant que tu délaisses le corps (au moments de la mort); **Om Smara** : Pense à 'OM', Notre Dieu protecteur et miséricordieux ! **Klibé smara** : Pense à tes méfaits, tes agissements, tes mauvais penchants, ta faiblesse; **Kritam smara** : Ressaisis – toi, et repens-toi du mal que tu as fait à ton prochain et aux autres

Interprétation / Anushilan

Ce verset est un message très fort que nous envoie Le Seigneur concernant notre âme (ātmā) et notre corps (sharira) pour notre salut.

(i) L'âme est spirituelle. De ce fait elle est immatérielle, incorporelle, immortelle et invisible, à part ses autres attributs. Elle n'est pas née de quiconque, elle n'a ni commencement ni fin, nulle arme ne peut la blesser ou la tuer, personne ne peut l'emprisonner, le vent ne peut La sécher, l'eau ne peut la tremper, le feu ne peut la bruler, et elle n'est pas sujette au dépérissement ou au vieillissement.

Tout comme le vent, elle est une force dynamique. Aussi longtemps qu'il y a sa présence dans le corps, on est en vie, et du moment qu'elle le quitte, c'est la mort qui s'ensuit, mais pas de notre âme qui va passer (naître) dans un autre corps ou atteindre l'émancipation (Moksha) selon ses mérites.

De par sa nature, l'âme ne peut rester éternellement inactive. Elle doit agir, elle doit jouer pleinement son rôle en exerçant ses potentiels et son dynamisme pour s'acquitter de toutes ses obligations ou ses devoirs (Karmas).

Pour ce faire, elle doit assumer un corps humain (naître dans l'espèce humaine). En d'autres mots, elle doit s'engager dans le cycle éternel de la vie et de la mort. Elle va ainsi continuer ce parcours jusqu'à ce qu'elle n'atteigne la libération de ce cycle, voire son émancipation (Moksha) d'après les mérites de ses 'karmas', voire ses actions. *cont. on pg 4*

N. Ghoorah

साक्षात्कार

गतांक से आगे

नोट – *'आर्यसमाज और हिन्दी' विषय पर अपना लघु शोध-प्रबन्ध लिखने के लिए बी०ए० के एक शोध-छात्र ने डॉक्टर उदय नारायण गंगू जी से साक्षात्कार के दौरान जो प्रश्न पूछे, उत्तरदाता ने आर्यसमाज द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर प्रकाश डाला, जो सबके लिए पठनीय है। प्रश्नोत्तर निम्नलिखित हैं -*

प्रश्न – यद्यपि गत दशकों में आर्यसमाज ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रशंसनीय कार्य किये हैं, तथापि यही दिखाई देता है कि आर्यसमाज की पाठशालाओं में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या साल-दर-साल घटती जा रही है। आपकी दृष्टि में इसका कारण क्या है?

उत्तर - प्रमुख कारण है, माता-पिता की प्रेरणा का अभाव। वर्तमान माँ-बाप बच्चों को हिन्दी पाठशालाओं में न भेजकर उन्हें शाम को ट्युशन लेने के लिए भेजते हैं। ट्युशन के बोझ - तले बच्चे दबे हुए हैं। बहुत से बच्चे अपनी पाठशाला पहुँचने के लिए सात बजे सुबह घर से निकलते हैं। अपने-अपने विद्यालय में पढ़ाई समाप्त करके सीधे ट्युशन लेने जाते हैं और शाम को छः बजे थके-माँदे घर लौटते हैं। रात्रि के भोजन के बाद होमवर्क करने में जुट जाते हैं। हिन्दी पढ़ने के लिए उनके पास फ़ुरसत ही कहाँ। माता-पिता समझते हैं कि हिन्दी-ज्ञान अनावश्यक है।

प्रश्न – माता-पिता की इस भूल को सुधारने के लिए क्या आपकी संस्था कोई कदम उठा रही है ?

उत्तर – सभा की ओर से अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। बताया जा रहा है कि अपने देश के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। हमारे पूर्वजों ने हिन्दी की रक्षा करके ही अपनी रक्षा की। उन्हें आजीविका के लिए घोर परिश्रम करना पड़ता था। उन्हें विधर्मी बनाने के लिए नौकरी का प्रलोभन दिया जाता था। परन्तु अपने धर्म, भाषा और संस्कृति-प्रेम के कारण वे अपनी पहचान बनाये रखने में अडिग रहे। माता-पिता को बताया जा रहा है कि भाषा संस्कृति की वाहिका होती है। भाषा-संस्कृति के कारण ही एक जाति अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। आर्य सभा भारत के साधु-सन्यासियों को आमन्त्रित करती रहती है। सभी एक स्वर में अपने धर्म और भाषा की रक्षा करने की प्रेरणा देते हैं। माता-पिता टेलीविजन पर हिन्दी सीरियल देखते रहते हैं, पर हिन्दी की ओर आकृष्ट होते ही नहीं । हमारे समय के माता-पिता भोजपुरी भाषी थे। पहले के सभी बच्चे घर में भोजपुरी बोला करते थे। भोजपुरी जानने के कारण उनमें हिन्दी सीखने की लगन थी। वर्तमान में अधिकांश बच्चों की मातृ भाषा क्रिओल है। इसलिए आज के बहुत से माँ-बाप हिन्दी से कोई सरोकार नहीं रखते। यह एक कड़वी सचाई है । धार्मिक पर्वों के अवसर पर हिन्दू समुदाय अपने पूजा-पाठ के लिए मंदिरों में जुट तो जाते हैं, परन्तु अपनी भाषा सीखने के लिए समय नहीं निकालना चाहते।

शेष भाग पृष्ठ २ पर

सम्पादकीय

आमदनी की वृद्धि

अपनी आमदनी में वृद्धि लाना और साथ ही व्यय में कमी करना हर व्यक्ति का उत्तरदायित्व बनता है। पुरुषार्थ तथा ईमानदारी के साथ धन कमाने वाले व्यक्ति अगर मितव्ययता पूर्वक खर्च करें तो उनकी सम्पत्ति दीर्घकाल तक साथ रहती है। जो मितव्ययी समझदारी से जीवन-यात्रा करते हैं, उनकी तिजोरी सदा भरी रहती है उन्हें कभी भी आर्थिक-मदद की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लक्ष्मी हमेशा उनके साथ रहती है।

आजकल रुपयों की आवश्यकता बढ़ गई है। पैसे के बिना सुगमतापूर्वक जीना बड़ा ही कठिन है। सवेरे उठते ही एक गृहस्थी को अपनी जेब टटोलना पड़ता है। सुबह से शाम तक खरीदारी करनी पड़ती है। खाली जेब ज़िन्दगी गुज़ारना मुश्किल है। पैसे का ख़र्चीला ज़माना है, क्योंकि आधुनिक युग में धन का महत्व बढ़ता जाता है। इसीलिए हर एक व्यक्ति को अपनी आमदनी में वृद्धि करनी चाहिए।

मेहनत से कमाई हुई सम्पत्ति का सदुपयोग करने में इंसान की चतुराई है और उसका दुरुपयोग करना मूर्खता है, अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने के समान है। धनवान से कंगाल बनने का संकेत है, क्योंकि किसी भी मूल्य पदार्थ का दुरुपयोग करने से हानि निश्चित होती है। यह सदा ध्यान रहे पाठको ! कि एक वार तिजोरी या बैंक से सम्पत्ति निकल जाने पर वह फिर बड़ी कठिनाई से वापस आती है। वास्तव में धन हमेशा साथ देने वाला नहीं होता है। इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

जीवन में धन कमाकर उसका सदुपयोग करना मानव-कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति मितव्ययी बनकर अपनी ज़िन्दगी का सफ़र करता है, उसे कभी भी किसी से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती है, बल्कि उसमें दूसरों की मदद करने की क्षमता होती है। जो बड़ी सादगी और किफ़ायती के साथ अपने श्रेष्ठ विचारों द्वारा जीवन व्यतीत करता है उसका आर्थिक विकास तथा पारिवारिक उत्थान होता रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक दृष्टिकोण से अपने जीवन को तपाकर धन हासिल करना चाहिए और साथ-ही-साथ बुद्धिमत्तापूर्वक किफ़ायती बनकर कमायी हुई सम्पत्ति को व्यय करना चाहिए।

लक्ष्मी उसी आदमी के पास रहती है, जो उसका सम्मान करता है। जो व्यक्ति प्राप्त लक्ष्मी का निरादर करता रहता है, उसके पास अधिक समय तक लक्ष्मी नहीं ठहरती। जिसे खुले हाथ खर्च करने की आदत पड़ गई है, तरह-तरह की खरीदारी, जुए, शराब, घुड़दौड़ आदि की बुरी लत लग गई है, वह फ़कीरी में आ जाता है। वह कर्ज़दार बनकर हमेशा चिन्ता में रहता है। कर्ज़ चुकाने की चिन्ता उसे बेचैन बना देती है। चिन्ता की अग्नि उसे झुलसती रहती है।

आधुनिक युग में निर्धन होकर गुज़ारा करना बड़ा कठिन है। अतः प्राप्त सम्पत्ति की उपयोगिता पर पूरा ध्यान देना हमारा धर्म है। इसी में जग भला है। सम्पत्तिशाली होना केवल किस्मत का खेल नहीं, अपितु उसके लिए कड़ी मेहनत और समझदारी की आवश्यकता है। इसीलिए सदा धर्म युक्त तथा ईमानदारी से धन प्राप्त करना मानव धर्म है और उसका सही उपयोग करना हमारा दैनिक-कर्त्तव्य है। जहाँ धर्म और कर्म का पूरा ख्याल किया जाता है, वहाँ जीवन विकसित होता जाता है।

बालचन्द तानाकूर

गतांक से आगे

रामपरसाद निऊर

सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के.,आर्य रत्न, मंत्री आर्य सभा मॉरीशस

सुखू जी को साधारण जीवन यापन करने के लिए और अपने पाँच बच्चों की परवरिश के लिए कहीं से अतिरिक्त आय का कोई खास स्रोत नहीं था। सरकारी नौकरी करते थे और खेती-बारी से अच्छी खासी आमदनी हो जाती थी। परिवार की देख-भाल करते हुए अब धीरे-धीरे पारिवारिक दायरे को फाँदकर समाज के दायरे में आ गये और फिर गाँव और इलाके में और फिर प्रान्त भर में उनका नाम छाने लगा। इतनी शक्ति तो निस्वार्थ सामाजिक सेवा में होती ही है !

१९२० के वर्षों में भारत से दो मूर्धन्य विद्वान् आये थे। एक श्रीमान् मेहता जैमिनी (आगे चलकर स्वामी) जो आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अद्वितीय प्रचारक बनें। वे अंग्रेज़ी एवं हिन्दी के बड़े ज्ञानी थे। जब अंग्रेज़ी बोलते थे तो हमारे नई पीढ़ी के नौजवान सुनकर आर्यसमाज की ओर आने लगे। उन नौजवानों में विष्णुदयाल बन्धुओं के साथ भोला मास्टर, छत्तर मास्टर एवं मोती मास्टर थे। सुखू रामपरसाद भी प्रभावित हुए। उसी समय मोरिशस में जन्मे काशीनाथ किस्तो धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर मोरिशस वापस आ गये थे और स्वामी स्वतन्त्रानन्द और डा० चिरण्जीव भारद्वाज दम्पति जैसे प्रचारक आर्यसमाज के अन्तर्गत परोपकारिणी सभा को आगे बढ़ाने में लगे हुए थे। १९२५-२६ में स्वामी विज्ञानानन्द भी आये। उस वक्त आर्यसमाज में विभाजन नहीं हुआ था। परोपकारिणी सभा प्रचार-प्रसार कार्य कर रही थी। इन सब के प्रभाव से सुखू जी वञ्चित नहीं रह सकते। वे ही स्वामी विज्ञानानन्द थे जिन्होंने पहली बार मोरिशस में शोभा यात्रा निकाली थी जो आज तक कभी कभी हम निकालते हैं और जिसे नगर कीर्तन के नाम से जानते हैं।

सुखू जी जो स्वयं प्रभावित होते थे अब नौजवानों को प्रभावित करने लगे; जो दूसरों के बताये हुए मार्ग पर चलते थे अब स्वयं मार्ग-दर्शक बन गए। पढ़ना-पढ़ाना और सीखना-सिखाना आर्यसमाज का सिद्धान्त है।

सुखू रामपरसाद पर लिखते हुए ज्ञाननाथ जो कभी लन्दन स्थित मोरिशस के उच्चायुक्त थे, कहते हैं, 'उस ज़माने में आर्यसमाजी नौजवान उन्हें अपने आदर्श समाज-सेवी मानते थे और उनसे प्रेरणा लेते। वे चलते-फिरते, उठते-बैठते प्रचारक बन गए थे।'

सन् ४० के वर्षों में जब भारत की आज़ादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तो हम मोरिशसवासी अपने देश मोरिशस को मुक्त करने का स्वप्न देखा करते थे और अपने स्वप्न को साकार करने के लिए समाज में जाकर प्रचार करते थे। उनमें सुखू जी अग्रणी होते थे। हिन्दी पाठशाला के वार्षिकोत्सव करने की व्यवस्था करते, भाषण देते और समारोह के अन्त में चन्दा उगाहने की जिम्मेदारी भी लेते थे। ऐसे ही उत्सवों में मैंने उनको कहीं पर पहली बार देखा था। वे वीर के समान ऊँची आवाज़ में ओजस्वी भाषण देते थे।

भारत जब १५ अगस्त सन् १९४४ में स्वतन्त्र हुआ तो मोरिशस में भारतीय वंशजों में खुशी की लहर दौड़ पड़ी। खूब सज-धज कर स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। और आगे हर १५ अगस्त को प्लेन दे पापाय के सिनेमाघर 'इरोस' में धूमधाम से स्वतन्त्रता दिवस मनाना उन्हींने ही आरम्भ किया था जिसमें टापू भर के बड़े-बड़े समाज सेवी और विधान सभा के सदस्यगण भाग लेते थे। उसका आयोजन सुखू जी अपने चन्द मित्रों को लेकर करते थे जिनमें रामेश्वर जयपाल भी होते थे।

जब मोरिशस में संविधान में परिवर्तन लाने की माँग चल रही थी तो बहुत विचार-विनिमय के बाद औपनिवेशिक अधिकारियों ने विवश होकर यह बात मान ली कि जो कोई भी २१ साल का नागरिक मोरिशस की किसी भी बोली या पढ़ी-लिखी जाने वाली भाषा में अपने हस्ताक्षर दे सकेंगे तो उसे मतदान का अधिकार दिया जाएगा। अधिक से अधिक नागरिकों को अपने हस्ताक्षर बनाने के लिए काम किया जाने लगा। इस दिशा में आर्यसमाज, जनान्दोलन और अन्य समाजिक संस्थाओं ने खूब सहयोग दिया। इस आन्दोलन में सुखू जी ने सब समाजियों को लेकर अथक परिश्रम किया। ऐसा करने से सुखू जी की प्रसिद्धि राजनीतिक नेताओं तक पहुँच गई। जब १९४८ के निर्वाचन का ऐलान हुआ तो सुखू जी बहुत ज्यादा सक्रिय हो गए थे। १९४८ के आम चुनाव में मोरिशस भर के प्रबुद्ध हिन्दुओं ने अपनी सक्रियता का प्रदर्शन किया। सुखू जी पीछे रहने वाले नहीं थे। पहली बार भारतीय समुदाय के लोगों को ऐसा स्वर्णिम मौका हाथ लगा था। पाम्प्लेमुस/रिव्येर जू राम्पार ज़िलों को एक चुनाव क्षेत्र माना जाता था। उम्मिदवार के रूप में डॉ० शिवसागर रामगुलाम, अनथ बिजाधर और रणछोड़दास वाग्जी खड़े हुए थे। पूरे देश में धुआँदार अभियान चलाया गया। उस चुनाव में कुली बाप के अनेक बेटे उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए थे। सुखू रामपरसाद जी ने डटकर काम किया। चुनाव का परिणाम बहुत ही आशाजनक था। १९ सफल सदस्यों में अधिक से अधिक हिन्दू उम्मीदवारों की जीत हुई। उनमें जो सफल हुए थे – सुकदेव बिसुनदयाल, श्री बिदेसी, डा० लखी नारायण, डॉ० शिवसागर, श्री अनथ बिजाधर, श्री जयनारायण रोय, श्री रण छोड़दास वाग्जी आदि थे।

१२ मार्च सन् १९६८ में मोरिशस को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। १९४८ से लेकर सन् १९६८ तक २० वर्ष हम हिन्दुस्तानी मूल के लोग हर १५ अगस्त को भारतीय स्वतन्त्रता दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाते थे 'लें-दे-पाँदाँस दे लेंद' स्वतन्त्रता का पर्यायवाची बन गई थी। जब मोरिशस स्वतन्त्र हुआ तो कम पढ़े-लिखे लोग बोलते थे कि हम भी अब अपना 'लें-दे-पाँदाँस दे लेंद' मनायेंगे। मोरिशस के स्वतन्त्रता-दिवस को समारोह पूर्वक मनाने के आयोजन में सुखू जी का बहुत बड़ा हाथ होता था।

सुखू जी वर्षों से आर्य परोपकारिणी सभा के अन्तरंग सदस्य रहे। १९५० के वर्षों में जब परोपकारिणी और प्रतिनिधि का विलय हुआ तो नया नाम पड़ा 'आर्य सभा मोरिशस' इस नव गठित सभा के बारी बारी रामपरसाद प्रधान, मंत्री और कोषाध्यक्ष बनें। उनकी सामाजिक सेवा की अवधि बहुत लम्बी रही। **क्रमशः**

पृष्ठ १ का शेष भाग

माता-पिता की मनोवृत्ति यही है कि उनके बच्चे पढ़-लिखकर उन विषयों में प्रमाणपत्र प्राप्त करें, जिन विषयों के प्रमाणपत्र से उन्हें शीघ्र नौकरी मिल सके। उनकी यह सोच उचित और स्वाभाविक है। हर माँ-बाप की यही साध होती है कि उनकी सन्तान बेकार न रहे। परन्तु वे यह नहीं समझना चाहते कि भाषा-संस्कृति से कटकर वे अपनी पहचान खो देंगे। आर्य सभा दो प्राथमिक और दो माध्यमिक विद्यालय चला रही है। चारों विद्यालयों में लगभग पाँच हज़ार बच्चे पढ़ते हैं, जिनमें पचास प्रतिशत हिन्दू बच्चे हैं। बहुत से माता-पिता अकसर पत्र भेजा करते हैं कि उनके बच्चों को हिन्दी न पढ़ाई जाय। इस प्रकार वे हिन्दी की उपेक्षा करते हैं।

प्रश्न – क्या आर्यसमाज की पाठशालाओं में पढ़ाने वाले हिन्दी अध्यापक अपनी भूमिका को ठीक तरह से निभा रहे हैं ?

उत्तर – हिन्दी पढ़ाने वाले वर्तमान अध्यापकों में वह समर्पण दिखाई नहीं देता, जो पूर्व के कमपढ़ गुरुओं में था। आज के अध्यापकों के पास हिन्दी के उच्च प्रमाणपत्र हैं, परन्तु उनमें बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो माता-पिताओं और बच्चों को हिन्दी की ओर प्रेरित करते हैं। जब से सरकार ने हिन्दी-शिक्षण के लिए भत्ता देना आरम्भ किया है, तबसे बहुत से हिन्दी शिक्षक-शिक्षिकाएँ उच्छृंखल हो गए हैं। उन्हें हिन्दी-शिक्षण से कोई मतलब नहीं, बस सरकारी भत्ते के लिए ही स्कूलों में अपनी उपस्थिति देते हैं। मैं सामान्यीकरण नहीं कर रहा हूँ । आज भी कुछेक ऐसे शिक्षक हैं, जिनमें हिन्दी पढ़ाने की वही लगन है, जो आज से दो-चार दशक पूर्व के अध्यापकों में थी। ये अध्यापक अपनी भाषा-संस्कृति के पुजारी हैं।

प्रश्न – हिन्दी की वर्तमान स्थिति को देखते हुए क्या हम कह सकते हैं कि इस देश में इस भाषा का भविष्य उज्ज्वल नहीं है?

उत्तर - मैं निराशावादी नहीं हूँ। समय परिवर्तनशील है। मुझे विश्वास है कि भविष्य में आर्य सभा में पंडित काशीनाथ किष्टो और श्री मोहनलाल जी मोहित सरीखे समाज सेवक पुनः उत्पन्न होंगे, श्री सुर्यप्रसाद मंगर भगत और श्री जयनारायण रॉय जैसे हिन्दी प्रेमी 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' का फिर से संचालन करेंगे और पंडित वासुदेव विष्णुदयाल जैसे जनसेवक एक बार और जनांदोलन के लिए तत्पर होंगे। महात्मा गांधी संस्थान एवं कई अन्य स्वयंसेवी संस्थाएँ हिन्दी शिक्षण में उद्यत हैं। सभी के संयुक्त प्रयास से हिन्दी का भविष्य आशाजनक होगा।

समाप्त

डॉ० उदय नारायण गंगू

लोकेऽत्र जीवनमिदं परिवर्तनशीलं

(इस संसार में यह जीवन परिवर्तनशील है)

श्रीमती डॉ० चेतना शर्मा बद्री

इस संसार में संस्कार से बढ़कर कोई ख़ज़ाना नहीं है। जिस समाज और घर-परिवार में संस्कारों को महत्व नहीं दिया जाता, वहाँ लोगों में सदाचरण व सम्मान की कमी होती है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता हमें संस्कारों में जीना और मान-मर्यादा, आत्मसम्मान सिखाती है। **अतिथि देवो भव** में एक अतिथि के प्रति कितने मान-सम्मान की भावना है। अतिथि जान-पहचान का हो या अनजान दोनों देवता के समान होते हैं। कितनी उत्तम विचार-धारा है, परन्तु इस संसार में कुछ विचित्र ही देखने को मिलता है। यदि कोई किसी को धोखा देने में सफल हो जाता है तब वह अपने आप को बहुत ही चतुर मानता है। और यदि उसके धोखे व छल-कपट का जवाब परमात्मा ने दे दिया तब सहन करना कठिन हो जाता है। वेद कहता है परमात्मा न्यायकारी है, वह बुराई और अच्छाई दोनों को समान रूप से देखता है। उसके दरबार में देर तो हो सकती पर अंधेर नहीं, वह कर्मानुसार सबका फ़ैसला करता है।

जो आपके सत्कर्मों पर आपको बधाई और पाप कर्मों पर उन्हें छोड़ने और बचने का परामर्श दें, वे आपके सच्चे मित्र व शुभचिंतक होते हैं। इसके विपरीत जो आपसे चापलूसी व चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं वे अपना हित साधते हैं, आपके हितकारी नहीं होते हैं। इस संसार का नियम अनोखा व निराला है । यहाँ सफल मनुष्यों से ईर्ष्या की जाती है और असफल मनुष्यों का तिरस्कार किया जाता है। इसलिए योग्य व्यक्ति किसी के दबाव में नहीं आते हैं और न ही किसी पर दबाव डालते हैं। मानव समाज की बहुत बड़ी बिडम्बना है, यहाँ कुछ लोग विवशताओं के कारण जीते जी मर जाते हैं। सारा ज़ीवन अभाव में बिताते हैं। इस संसार में उनका होना न होना कोई मायने नहीं रखता है। कुछ अपने सत्कार्यों के लिए मरने के बाद भी अमर हो जाते हैं। युगों तक उनका स्मरण किया जाता है, समय-समय पर उनके उदाहरण दिये जाते हैं।

इस संसार में दूसरों के प्रति हमदर्दी रखने वाले एवं किसी के लिए अच्छा सोचने वाले लोग बहुत कम हैं। हर कोई अपने बारे में ही सोचता है, इसलिए वह दूसरों से तिरस्कृत होता है। मनुष्य एक दूसरे के साथ केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जुड़ते हैं या याद करते हैं। इस संसार के मालिक परमपिता को भी ज़रूरत पड़ने या विशेष अवसरों पर ही याद करते हैं। अपने अहं के कारण ही मनुष्य स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझता है। किसी को भी सम्मान नहीं देना चाहता है, यदि मान देता भी है तो पहले से सोचता है मुझे इससे क्या लाभ होगा। किसी और को उसे कोई चिंता नहीं। जहाँ स्वार्थ की भावना बीच में आ जाती है, वहाँ प्रेम और अपनापन नहीं रहता।

परमात्मा की सबसे श्रेष्ठ रचना मनुष्य के चरित्र में इतना परिवर्तन आता जा रहा है। किसी सामाजिक कार्य, यहाँ तक कि यदि किसी अन्त्येष्टि में भाग लेना पड़ जाये तो वहाँ ऊबने लगता है। मृतक के परिवार के साथ सहानुभूति रखना तो दूर, बस पूछने लगता है कि कितना समय और लगेगा, जबकि वह जनता है कि उसकी भी एक दिन यही गति होनी है । जो अटल सत्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि धीरे-धीरे मनुष्य अपनी संवेदनायें खोता जा रहा है। प्रत्येक प्रकार के सोच-विचार को अपने हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए। हमारा मन संकुचित होता जा रहा है, उसे विशाल बनाना चाहिए। यदि सभी स्वार्थी और संकुचित हो गये तो परमात्मा के इस सुन्दर संसार का क्या होगा ? ईश्वर से प्राप्त गुणों के बावजूद मनुष्य इन गुणों से दूर होता जा रहा है । जब तक मनुष्य की आँखों से स्वार्थ का चश्मा नहीं उतरेगा तब तक उसे ईश्वर द्वारा बनाई गयी सृष्टि के सौन्दर्य का बोध नहीं होगा।

गृहस्थाश्रमियों के कर्तव्य

पं० अंजनी महिपथ, शास्त्री

विवाह के पश्चात् वर-वधू पति-पत्नी के रूप में जब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, तब उन्हें अपने कन्धों पर अनेक ज़िम्मेदारियों का भार वहन करना पड़ता है। विवाह का अर्थ ही है वहन करना। वैवाहिक जीवन में दम्पति के लिए विभिन्न कर्तव्य निर्धारित हैं। गृहस्थाश्रम एक ऐसा पड़ाव है, जिसमें पति-पत्नी को साथ मिलकर गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करना आवश्यक होता है। यह तभी सम्भव है जब पति-पत्नी का मत एक हो। दोनों में प्रेम हो, माधुर्य हो, और वे एक दूसरे से प्रसन्न हो। मनु महाराज का कहना है कि-

संतुष्टो भार्यया भर्ता भार्या भर्त्रा तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र ते ध्रुवम् ।।

अर्थात् जिस कुल में पत्नी-पति से और पति-पत्नी से अच्छे प्रकार प्रसन्न हों, उसी कुल में सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। आजकल गृहस्थाश्रम की ज़िम्मेदारियों, धर्मों और कर्तव्यों से अनभिज्ञ होने के कारण कुछ घरों में कलह उत्पन्न होती है। पति-पत्नी के बीच अलगाव और विवाह-विच्छेद हो रहा है। यह एक पारिवारिक और सामाजिक समस्या है।

गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी का प्रथम धर्म उत्तम संतान उत्पन्न कर परिवार का निर्माण एवं पालन-पोषण करना। वे स्वाध्याय को कभी नहीं त्यागें। वेदादि शास्त्रों का नित्य स्वाध्याय कर ज्ञान की वृद्धि करें। गृहस्थाश्रम में निर्देश है कि दम्पति ब्रह्मयज्ञ, देव-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ और अतिथि यज्ञ करे । ब्रह्मयज्ञ याने संध्या रात-दिन की सन्धि-बेला में सुबह और शाम करे। देव-यज्ञ प्रातः-सायं दोनों वक्त करने का विधान है। पितृ यज्ञ – जीवित माता-पिता, गुरु, आचार्य और अन्य बुज़ुर्गों की सेवा करना। पितृ-यज्ञ दो प्रकार का है। एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध का अर्थ है जीवित माता-पिता, पितामह आदि की श्रद्धापूर्वक सेवा करना और तर्पण का अर्थ है कि माता-पिता, गुरु, आचार्य आदि को उत्तम अन्न, उत्तम वस्त्र और अन्य उत्तम पदार्थों से सत्कार कर उन्हें संतुष्ट और प्रसन्न करना। बलिवैश्वदेव यज्ञ – इसमें तैयार किये हुए घी, मिष्ठ भोजन आदि को चूल्हे की अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं और अतिथि यज्ञ – धार्मिक व्यक्ति, उपदेशक, सबका उपकार करने वाले पूर्ण विद्वान्, चारों ओर घूमनेवाले संन्यासी आदि को आसन देकर आदर और श्रद्धापूर्वक सत्कार करके उनसे ज्ञान प्राप्त करना अतिथि यज्ञ है ।

इन पाँच महायज्ञों को सम्पन्न करने से जो फल प्राप्त होता है, वे इस प्रकार हैं :– 'ब्रह्मयज्ञ' करने से विद्या,शिक्षा और धर्म की वृद्धि होती है। 'अग्निहोत्र' करने से वायु और वर्षा का पानी पवित्र होता है। रोग दूर होता है और शुद्ध वायु में साँस लेने से और पवित्र अन्न ग्रहण करने से मनुष्य सदा स्वस्थ रहते हैं। 'पितृ यज्ञ' करने से माता-पिता और आचार्य से आशीर्वाद तथा ज्ञानियों एवं विद्वानों की सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है। 'अतिथि यज्ञ' करने का उत्तम फल ज्ञान की प्राप्ति है ।

इन पाँच महायज्ञों के अतिरिक्त सत्यार्थ प्रकाश में और दो यज्ञों को सम्पन्न करने का निर्देश है। एक है नित्य स्वाध्याय करना, वेदादि शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना योगाभ्यास करना और दूसरा देव-यज्ञ करना। विद्वानों की संगति करना, दूसरों की सेवा करना, उत्तम गुणों को धारण करना और विद्या की उन्नति करना।

अन्न और मन

श्रीमती यमावन्ती चूड़ामणि

मनुष्य के जीवन में अन्न का बहुत बड़ा महत्व है। अन्न से न केवल शरीर को ही लाभ होता है, बल्कि मन और मस्तिष्क भी प्रभावित होते हैं। जैसा अन्न हम खाते हैं, उसी के आधार पर हमारे मन और मस्तिष्क बनते हैं। खाया हुआ अन्न मानव शरीर में तीन भागों में बाँट जाता है। पहला भाग उस अन्न के पुष्टिकारक तत्व हैं अर्थात् उसमें पाये जाने वाले vitamin, protein आदि हैं, जो शरीर के लिए काम आते हैं। दूसरा भाग वह है, जिसे शरीर त्यागता है अर्थात् मल आदि याने कि waste matter। तीसरा भाग उस अन्न का सूक्ष्म रूप है, जो मन और मस्तिष्क को बनाता है। अन्न को जिस भावना से प्राप्त किया गया हो, पकाया गया हो और खाया गया हो, वही भावनाएँ मन ग्रहण करता है और उसी के आधार पर मनुष्य के गुण, कर्म, आचार, विचार और व्यवहार बनते हैं।

भीष्मपितामह जब बाणों की शैय्या पर पड़े धर्म की बातें सुना रहे थे तब द्रौपदी ने उनसे पूछा – 'हे भीष्मपितामह, इस समय आप धर्म और ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें कह रहे हैं, लेकिन जब दुर्योधन और दुश्शासन भरी सभा में मेरा अपमान कर रहे थे तब आपके धर्म और ज्ञान कहाँ थे'? तब भीष्मपितामह ने दुख से कहा - 'तू ठीक कहती है, बेटी। उस समय दुर्योधन का पाप भरा अन्न खाकर मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, मन मलिन हो गया था। आज अर्जुन के बाणों से पाप भरा खून निकल गया है। पाप भरे अन्न का प्रभाव भी समाप्त हो गया । अब धर्म और ज्ञान की बातें फिर से मेरे मन में आने लगी हैं। मैं लज्जित हूँ कि उस समय मैं तेरी रक्षा नहीं कर पाया था।'

प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अन्न के महत्व को अच्छी तरह समझे। वेदों में मन को **ज्योतिषां ज्योतिः** कहा गया है अर्थात् मन प्रकाशों का भी प्रकाश है। मन में अन्धेरा हो तो सारा जगत् अन्धेरा लगेगा। मन में अगर ज्योति हो तो संसार ज्योतिर्मय लगेगा। अतः मन को सदा शुद्ध पवित्र रखना आवश्यक है। शुद्ध आहार से ही मन को शुद्ध बनाया जा सकता है। यह कहावत सब जानते हैं - जैसा खाएगा अन्न वैसा बनेगा मन।

सूचना

पाठकों की सेवा में विदित हो कि वैदिक धर्म और आर्यसमाज के मन्तव्यों से सम्बन्धित विपुल वैदिक साहित्य ऋषि दयानन्द संस्थान के पुस्तकालय, पाई में उपलब्ध है। साथ ही महापुरुषों की जीवनियाँ भी उपलब्ध है ।

पाठकों से निवेदन है कि वे सोमवार से शनिवार तक प्रातःकाल १०.०० बजे से ३.०० बजे के बीच Rishi Dayanand Institute, M2 Lane, Avenue Michael Leal, Pailles के 'श्रीमती कुलवन्ती झमन पुस्तकालय' से अध्ययनार्थ पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं। कुछ पुस्तकों के शीर्षक इस प्रकार हैं –

१. भारतीय दर्शन में माया की अवधारणा, *डा० अनिल कुमार वर्मा / डॉ० शुभजि मंडल*
२. डॉ० अम्बेडकर और दलित आन्दोलन, *डॉ० धर्मवीर*
३. सफलता का रहस्य, *जगतराम आर्य*
४. लोक साहित्य और संस्कृति, *दिनेश्वर प्रसाद*
५. रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (१), *विश्वनाथ नखणे*
६. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी - जीवन और कार्य, *श्री लाला लाजपतराय*
७. छत्रपति शिवाजी, *श्री लाला लाजपतराय*
८. वीर सावरकर - व्यक्ति एवं विचार, *Dr N.C. Mehrotra*
९. गणेश शंकर विद्यार्थी संचयन, *सुरेश सलिल*
१०. महाराणा प्रताप, *सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा*
११. सरदार पटेल (राष्ट्रीय जीवनी माला), *मीना अग्रवाल*
१२. रामप्रसाद बिस्मिल, *विनोद तिवारी*
१३. महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा, *डॉ० (प्रो०) भवानीलाल भारतीय*
१४. आजादी के दीवाने, *डॉ विद्या प्रकाश*
१५. वीर सावरकर, *डॉ० भवानसिंह राणा*
१६. गुरु गविन्दसिंह जीवनी, *सुरिन्दसिंह जौहर*
१७. शिखर सेनानी सुभाष, *हरिन्द्र श्रीवास्तव*
१८. सुरेंद्र वर्मा (व्यक्ति और अभिव्यक्ति), *डॉ० जिजाबराव पाटील*
१९. स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली, *गोविन्दराम हासानन्द*
२०. युगचेता प्रसाद, *डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव*
२१. श्रीमद्दयानन्द - प्रकाश *(स्वामी सत्यानन्द)*
२२. स्वामी दयानन्द की जीवन यात्रा, *जगतराम आर्य यशपाल पुरोहित*
२३. संस्कृति का आईना, *डॉ० सुखविन्दर कौर*
२४. रामचरितमानस की पाश्चात्य समीक्षा
२५. आचार्य वासुदेव विष्णुदयाल का जन्म शताब्दी-ग्रंथ, खेमराज लीला

Neermala Sookar
Rishi Dayanand Institute, M2 Lane, Avenue Michael Leal, Pailles

ग्राँ बे आर्यसमाज का लघु इतिहास

एस० प्रीतम

ग्राँ बे आर्यसमाज की स्थापना सन् १९५३ में हुई थी। तत्कालीन प्रधान मंत्री डॉ० सर शिवसागर रामगुलाम के कर-कमलों द्वारा मंदिर की नींव का पत्थर इन-इन महान् हस्तियों की उपस्थिति में रखा गया था – सर सत्काम बुलेल, सर रवीन्द्र घरभरण, डा० रुद्रसेन निऊर, स्वामी ध्रुवानन्द और महात्मा आनन्द भिक्षु।

ग्राँ बे निवासी श्री जयकरण पंचन्द ने एक टुकड़ी ज़मीन दी थी। संस्थापकों में पं० ज० मितारू, श्री श्री डी० बिसेसर, टी० सिचरण, म० रामसाहा, डी० एतवार और बी० मूथूर थे।

प्रारम्भिक काल में जो मंदिर बना था वह लकड़ी और टिन का था। उस ज़माने में सभी भवन टिन ही से छाया जाता था। १९६० के भयंकर (Carol) कारोल तूफ़ान ने उसे पूरा धराशायी कर दिया था। परिणामस्वरूप कुछ सदस्य निराश हो गए थे, क्योंकि उनके हवन-यज्ञ और सत्संग के लिए कोई जगह नहीं थी। लेकिन कुछ साहसी मेम्बरों ने साहस बटोर कर एक पक्का भवन बनाने का निश्चय किया, पर बात सहज नहीं थी। फिर भी कुछ-न-कुछ करना था।

कारोल तूफ़ान के सात साल पश्चात् श्री श्री लाला आलम और बी० बिसेसर समाज के सदस्य बने और बहुत जल्दी यज्ञ-सत्संग होना आरम्भ हुआ और हिन्दी का पठन-पाठन शुरू हुआ । समाज में फिर से जान आने लगी।

१९७० के वर्षों में महिला समाज का गठन हुआ, ताकि यज्ञ-सत्संग वे कर सकीं, जो आज तक कायम है।

समाज को आगे बढ़ते हुए देखकर अनेक पेशेवर, जैसे डॉक्टर, बैरिस्टर तथा ज़िला परिषद् के अध्यक्ष एवं आर्य सभा मोरिशस के उपमंत्री आदि सदस्य बनने लगे।

२०१४ में सदस्यों ने एक मत होकर पुराने मंदिर की जगह एक नया पक्का भवन बनाने का निश्चय किया। कहते हैं जहाँ चाह है, वहाँ राह है। स्थानीय सभासदों ने आर्थिक सहयोग और आर्य सभा की महत्वपूर्ण आर्थिक सहायता से वहाँ के लोगों का सपना तो पूरा हो गया, पर कुछ कार्य बाक़ी है।

वर्तमान में सभा के कर्णधारों का इरादा है एक और मंज़िला जोड़ने का ताकि नौजवानों को आकृष्ट करने के लिए योग की शिक्षा दी जाए, ड्रामा का प्रदर्शन किया जा सके, काराटे और अन्य गतिविधियाँ की जा सकें।

वर्तमान में समाज में ८० सदस्य हैं। निकट भविष्य में सदस्यों की संख्या बढ़ाने का दृढ़ संकल्प है। ये सब काम करने के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। लोगों से दान की अपेक्षा है। दिल खोलकर दान दें और दयानन्द के कार्य को आगे बढ़ाने में मदद करें।

cont. from pg 1

Om Vāyuranilamamritamathedam bhasmāntam shariram.
Om krato smara, klibe smara, kritam smara.

Yajur Veda 40/15

(ii) Quant au corps humain, il est matériel, périssable ou mortel. Il est aussi sujet à la souffrance, aux maladies et au vieillissement. Mais il est le seul moyen par lequel l'âme vient au monde pour accomplir ses devoirs (karmas) jusqu'à son émancipation. C'est elle qui gère ce corps humain, le fait fonctionner avec le concours de toutes ses forces vitales et autres potentiels. C'est elle qui est responsable et qui jouit de toutes les actions que le corps exécute sous ses directives. Finalement elle le délaisse quand il est trop vieux et inutilisable, et c'est la mort du corps.

Après la mort du corps physique, c'est sa détérioration qui va s'ensuivre. Dans le délai prescrit il nous incombe le devoir d'accomplir son dernier rite (Antyeshti Sanskar). C'est l'incinération du corps (cadavre) sur un bûcher funéraire (chitā) ou dans un four crématoire. Pour le défunt, il n'y a plus d'autres rites à accomplir par ses proches.

Evidemment l'incinération est le moyen le plus scientifique et elle évite toute pollution de l'environnement.

(iii) Après ce constat, n'oublions pas que ce monde a été créé par Dieu, notre Seigneur. C'est lui qui en est le Maître Suprême et unique au monde. C'est lui qui le gère. Il est omniprésent, tout-puissant, omniscient, immortel, éternel et miséricordieux entre autres. Il nous protège, et pourvoit à tous nos besoins en créant toutes les conditions favorables sur cette terre pour que nous puissions y vivre confortablement.

Conséquemment nous devons tous être redevables envers le Seigneur pour sa bienveillance, sa protection et de tous ses bienfaits à notre égard. Nous, les âmes (ātmās), nous avons été accordés le corps humain dans cette naissance par lui, selon nos Karmas. Parmi les multitudes de créatures de ce monde, nous sommes les seules créatures douées d'un langage articulé, (nous pouvons nous exprimer par la parole), de l'intelligence et du pouvoir de discernement, et nous sommes habilités à connaître Dieu, à être en communion avec Lui par notre méditation (dhyāna) et notre spiritualité, et nous libérer du cycle éternel de la vie et de la mort par nos karmas et nos devoirs.

La seule façon de se rapprocher du Seigneur c'est par la prière, les Yajnas, la méditation (dhyāna) en se concentrant sur 'Om' (le nom suprême du Seigneur qui englobe toutes ses caractéristiques ou ses attributs) et le prānāyāma. C'est le meilleur moyen d'exercer un contrôle parfait sur nos sens et notre esprit pour communier avec Dieu. C'est aussi la voie suivie par nos aînés, les érudits, les sages et les ascètes qui ont réussi à atteindre l'émancipation.

Dans notre vie il faut que l'on sache que toutes nos actions ne passent pas inaperçus de L'Être Suprême et nous aurons à récolter les fruits de nos actions, qu'ils soient bons ou mauvais. Il nous faut à tout prix éviter les actes répréhensibles.

Aussi, il ne faut pas attendre son dernier moment pour jeter un coup d'œil sur toutes ses actions - bonnes ou mauvaises durant toute sa vie pour se ressaisir, pour se repentir de ses agissements, examiner sa conscience et rectifier son comportement pour de bon. Il fait faire cet exercice tous les jours.

C'est ainsi que l'on va purifier son esprit et son âme, recevoir la bénédiction du Seigneur et atteindre la Félicité Eternelle (Moksha) quand notre corps, après sa mort se transformera en poussières, voire en cendres à la suite de son incinération.

Valuable pearls from history pages

Hindi Training Class

The Hindi Training Class started by the Arya Pratinidhi Sabha has commenced its course since Saturday last 2nd May at the Mensil Kanya Patshala. The inauguration was held in the presence of some leading members of the Arya Pratinidhi Sabha.

On Saturday the 2nd April last a preliminary examination was held. Messrs S. Jugduth and Narain Master were Co-examiners. Out of numerous candidates who sit for the examination, about 25 had satisfied the examiners.

We understand that the same number of students are actually following the course. As our readers are aware the Vice-Principal is Mr S. Jugduth, a young and intelligent man, holding the Matriculation Certificate. We are informed that he is well up in Hindi.

Extract from : Arya Vir, 8th May 1936

Contributed by : **Pahlad Ramsurrun**

एक प्रेरणादायिनी महिला को देखा

रमावध राम

हमारे निकट गाँव "Beau Jardin" में एक ऐसी महिला रहती है, जो एक सौ एक वर्षीया हैं। उनकी बेटी उनकी देख-भाल करती है। हर दो महीने के बाद मैं उनसे मिलने जाता हूँ। वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं। उनके असली दाँत अभी तक हैं। उनको देखकर मुझे वेद में वर्णित जीवेम शरदः शतम् मन्त्र से प्रेरणा मिलती है कि सौ साल तक कुछ करते रहो। वह महिला जवानी में एक गोरे के यहाँ रसोइया के रूप में काम करती थीं। गोरा तो चला गया और रीशानो गाँव भी सूना हो गया, क्योंकि कारखाना टूट गया । अब वे "Beau Jardin" में उस घर में रहती हैं, जो कोठी वालों ने उन्हें उनके लम्बे और अच्छे काम के लिए दिया है ।

वह महिला Madame Le Joseph Tibert नाम से जाने जाती हैं। वे अभी तक कुछ न कुछ सिलाई का काम करती हैं। उनको देखकर मैं सोचता हूँ कि मैं तो अभी केवल ८३ वर्ष का हूँ, तो क्यों बैठा रहूँ? ईश्वर उस महिला को और भी लम्बी आयु दे, ताकि दूसरों को उनसे प्रेरणा मिले। जीने के लिए मैं अभी तक छोटे-मोटे व्यापार करता हूँ। २८ वर्षों से 'गयासिंह' आश्रम में दान करता आ रहा हूँ। ऐसा करने को मेरे गुरु जी, पं० विष्णुदयाल ने मुझे कहा था। आज तक उनके आशीर्वाद से यह दान देता आ रहा हूँ।

स्वस्थ रहने का साधन भी होना चाहिए। स्वास्थ्य, सत्संग और योगाभ्यास के लिए गृहस्थ होकर भी ब्रह्मचारी रहना चाहिए। मैं वर्षों से पूर्ण शाकाहारी हूँ। यज्ञ में दैनिक भाग लेता हूँ।

THE HUMAN MACHINE

Sookraj Bissessur (B.A Hons)

Virgil, the famous Roman Poet, spoke about the winning team of a boat race in the following words: "They can, because they think they can". That was an optimistic state of mind!

Nothing slows up the human machine so much as faint-heartedness. Nothing gives it such an impetus as faith in one's abilities. The man who succeeds is the one who has firm conviction that he can do the task. The ability to think rightly is a golden key to open the door of opportunity. Likewise the ability to speak and write any language after having mastered same – is an acquisition not a gift. Man's thought(s) always tend to become actions and repeated actions become habit. If a person's effort is not yielding its fruits he has to look for the reasons.

Generally people fear failure and thus do not act and react. That becomes a powerful brake on the path of success. Conviction is the first step to realise one's ambitions, therefore –"Think Positively". Believe in the self. Let's make use of the subconscious self. Let's always remember and retain in mind that :- "The fruits of pain and labour always go to those who endeavor".

Some daily practice is strongly needed. Before retiring to sleep and immediately after wake up, one should spend some time in positive thinking, most especially to know and understand our abilities and weak points. But remember one cannot do anything merely by thinking only. He / She needs to act and react accordingly! Such type of implicit faith will augment one's efficiency. "Positive Thinking" coupled with appropriate action – is a powerful engine, whereas "Negative Thinking" / or any inactivity is truly a brake.

Maharshi Dayanand Saraswati elaborating on the attributes of man has pointed out that it is the sacred duty of human intellect to scrutinize, guide, judge and discriminate. We should always endeavor to propel the engine for the uplift of the physical, moral, spiritual and intellectual standards of all in society. Such good and noble action needs to start from the self as a locus. The contagious benefits would spread on the peripherals and the world would be a better place!

गतांक से आगे

महर्षि दयानन्द की देन

आचार्य विरजानन्द उमा

महर्षि का अमूल्य देन है- वेद की देन

वेद मानव जाति का सबसे प्राचीन, पवित्र और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। वह सब विधाओं तथा ज्ञान-विज्ञान का आधार है। वेदोऽखिलो धर्म मूलं - वेद अखिल धर्म का मूल है। परमेश्वर से लेकर तृण तक सभी छोटे-बड़े पदार्थों का इसमें विवेचन किया गया है। परम पिता परमात्मा ने प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार महर्षियों को चारों वेदों का ज्ञान दिया। गुरुशिष्य परम्परा द्वारा उत्तरवर्ती कालों में इसका प्रचार हुआ। इस प्रकार महाभारत काल से अबाध रूप से इस ज्ञान की परम्परा चलती रही है । समय-समय पर जब इसके प्रचार में शिथिलता आने लगी तो ऋषियों ने पुनः अत्यन्त कष्ट सहन कर इस ज्ञान ज्योति को सर्वत्र फैला दिया। महाभारत युद्ध के पश्चात् वेद के पवित्र ज्ञान का ह्रास हो गया। ऋषियों की परम्परा पर भी उसका प्रभाव पड़ा। इस कारण सब लोग धर्म-कर्म से हीन, दीन और मलीन हो गए। मर्यादा, सिद्धान्त और परम्पराओं में मलिनता आ गई। वर्ण व्यवस्था भंग हो गई। आश्रम व्यवस्था विश्राम करने लगी। सामाजिक संगठन विगठित हो गए। कुरीतियों को लोग अपनाने लगे, विरोधी शक्तियों ने देश जाति और मानवता पर आक्रमण कर दिया, दूसरी विरोधी शक्तियों ने देश पर आक्रमण कर दिया।

महर्षि दयानन्द ने प्रबल युक्तियों और शास्त्र प्रमाण के आधार पर इन विचार-धाराओं का खण्डन किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वेद गड़ेरियों के गीत नहीं, अपितु सभी विद्या विज्ञानों का भण्डार है। उसका भी उन्होंने खण्डन किया कि वेद के मन्त्रों के कोई अर्थ नहीं होता। ऋषि ने यह भी सिद्ध किया कि वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। मन्त्रों में जो व्यक्तियों के नाम के सदृश शब्द दिखाई देते हैं वे किसी व्यक्ति-विशेष के वाचक नहीं हैं। उन शब्दों का अर्थ होता है। मन्त्रों में त्रिविधार्थ का भी उन्होंने प्रतिपादन प्रकरणानुसार मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ होते हैं। महर्षि के पूर्व भाष्यकारों ने केवल यज्ञ परक अर्थ किया था। महर्षि ने अपने वेद भाष्य में तीनों प्रकार का अर्थ किया है। कहीं पर मन्त्र का एक कहीं दो तथा कहीं तीनों अर्थ होते हैं। उदाहरण स्वरूप इन्द्र शब्द का अर्थ देखे –

आधिभौतिक अर्थ – राजा और वीर सेनापति
आधिदैविक अर्थ – विद्युत और सूर्य वाचक
आध्यात्मिक अर्थ – आत्मा और परमात्मा का ग्रहण होता है।

इसी प्रकार अग्नि, वरुण, अश्विनौ, रुद्र, विष्णु, अदिति नहुष, यदु, दुह्य, अनु, तुर्वश, उर्वशी आदि शब्द यौगिक है।

अतः ऋषि को जानना है तो उनके ग्रंथों का गहन अध्ययन करना चाहिए।

ARYODAYE
Arya Sabha Mauritius
1,Maharshi Dayanand St., Port Louis,
Tel : 212-2730, 208-7504, Fax : 210-3778,
Email : aryamu@intnet.mu,
www.aryasabhamauritius.mu
प्रधान सम्पादक : डॉ० उदय नारायण गंगू,
पी.एच.डी., ओ.एस.के., आर्य रत्न
सह सम्पादक : श्री सत्यदेव प्रीतम,
बी.ए.,ओ.एस.के,सी.एस.के.,आर्य रत्न
सम्पादक मण्डल :
(१) डॉ० जयचन्द लालबिहारी, *पी.एच.डी*
(२) श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न*
(३) श्री नरेन्द्र घूरा, *पी.एम.एस.एम*
(४) योगी ब्रह्मदेव मुकुन्दलाल, *दर्शनाचार्य*
इस अंक में जितने लेख आये हैं, इनमें लेखकों के निजी विचार हैं । लेखों का उत्तरदायित्व लेखकों पर है, सम्पादक-मण्डल पर नहीं ।
Responsibility for the information and views expressed, set out in the articles, lies entirely with the authors.
मुख्य सम्पादक
Printer : BAHADOOR PRINTING CO. LTD
Ave. St. vincent de Paul, Les Pailles,
Tel : 208-1317, Fax : 212-9038